n.com/ePaperArticle/06-dec-2015-edition-Delhi-City-page_12-24795-14333-4.html

शिक्षा की भाषा का सवाल

पठन-पाठन के माध्यम के चुनाव को नई शिक्षा नीति का सबसे महत्वपूर्ण मामला मान रहे हैं गिरीश्वर मिश्र

शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का अस्त्र माना गया और विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए यत्न किए जाते रहे हैं। स्वतंत्र भारत में शिक्षा की स्थिति का आकलन करने के लिए राधाकृष्णन और कोठारी जैसे महारथियों की अध्यक्षता में आयोग और समितियों का गठन होता रहा है और उनकी रपट में अनेक सुझाव और अनुशंसाएं दी जाती रही हैं। हर सरकार की नीयत यही रही है कि शिक्षा का विस्तार हो और शिक्षित होकर जन-जन का सशक्तीकरण हो। इन प्रयासों के बावजूद शिक्षा में गुणवत्ता की दृष्टि से विशेष सुधार नहीं हो सका है और एक देश के रूप में हमें अभी भी लंबी दूरी तय करनी है। इस यात्रा में हमें कहां जाना है, किस रास्ते जाना है, किन उपायों की सहायता से जाना है? ये सारे प्रश्न अभी भी खड़े हैं और समस्याएं जटिल से और जटिलतर होती जा रही हैं।

इस समय एक बार फिर व्यापक पैमाने पर शिक्षा को लेकर चिंतन चल रहा है और एक नई शिक्षा नीति पर गहन चर्चा चल रही है। परिवर्तन की तैयारी के अवसर का लाभ उठाते हुए यह उपयुक्त होगा कि इस चिंतन की दिशा पर गौर किया जाए। इसके कई पक्ष हैं, पर सबसे खास पक्ष है शिक्षा का माध्यम क्या हो, क्योंकि माध्यम का चुनाव शिक्षा नीति को समाज के विभिन्न वर्गों के लिए भिन्न-भिन्न सीमाओं तक समावेशी बना सकेगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि संपूर्ण समाज का विकास ही देश के विकास का लक्ष्य है और इसके लिए शिक्षा के अवसर तक पहुंच सर्वव्यापी हो, इसका उद्यम करना आवश्यक है। इस चिंता का ताजा संदर्भ संविधान दिवस पर बाबा साहब अंबेडकर का कृतज्ञ राष्ट्र द्वारा संविधान की प्रस्तावना को स्मरण करने का अवसर था। संविधान दिवस मनाते हुए हमने स्वतंत्रता, समता, न्याय तथा बंधुत्व के प्रति देश के संविधान निर्माताओं के समर्पित मनोभावों को याद किया। इन संवैधानिक मूल्यों को दोहराते हुए शिक्षा के परिसरों में लोगों के मन में यह सवाल भी गूंज रहा था कि हमें गंभीरता से विचार करना चाहिए कि हम देश में इन मूल्यों की स्थापना की ओर किस गति से आगे बढ़ रहे हैं और इन्हें कहां तक कार्य रूप में स्थान दिया जा सका है? स्पष्ट है कि ये चार मूल्य एक-दूसरे से ऐसे जुड़े हुए हैं कि यदि इनमें से कोई भी कमजोर पड़ता है तो शेष दूसरे मूल्यों पर भी उसका बुरा असर पड़ता है। आदर्श वाक्यों के रूप में जहां इनका महत्व असंदिग्ध है वहीं व्यवहार के स्तर पर अभी भी बड़ी खाई दिखाई पड़ती है और ऐसे में आम आदमी की खुशहाली को लेकर चिंताएं बढ़ने लगती हैं। समता का तात्पर्य बिना किसी तरह के भेदभाव के सबके लिए अवसरों की समानता को सुनिश्चित करना है। तथ्य यही है कि देश में शिक्षा का जो स्थापित ढांचा है उसमें स्पष्ट रूप से शिक्षा का आयोजन अंग्रेजी के पक्ष में जाता है जो अभी भी थोड़े से ही लोगों की भाषा है और वे लोग भी शायद निखालिस अंग्रेजी नहीं बोलते हैं। अंग्रेजी की प्रधानता और उसके प्रति अतिरिक्त आग्रह शिक्षा का स्तर बढ़ने के साथ-साथ बढ़ता ही जाता है। इस तरह उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा अधिकांशतः अंग्रेजी की ही पक्षधर है। ऐसे में भारतीय भाषा बोलने वाले गैरअंग्रेजीदां छात्र उच्च शिक्षा की परिधि से परे धकेल दिए जाते हैं, क्योंकि वे अपात्र हो जाते हैं। नौकरी के अनेक अवसरों में भी यह भेद दिखाई पड़ता है।

दो जरूरी बातें

- **यह समाज के व्यापक हित में होगा कि हम न केवल शिक्षा के माध्यम को परिचित भाषा में ढालें, बल्कि भाषा शिक्षण की पद्धति को भी वैज्ञानिक ढंग से लागू करें**

अंग्रेजी की व्यापक उपस्थिति का एक असर यह भी है कि समाज के अमीर- गरीब हर वर्ग के लोग अपने बच्चे को ऊंची शिक्षा दिलाना चाहते हैं। अंग्रेजी माध्यम के प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ाने के लिए हर पापड़ बेलते हैं और पेट काट कर निजी विद्यालयों में बच्चे को भरती कराते हैं। उनकी आशा होती है कि आगे चल कर वह एक 'सफल' और 'बड़ा आदमी' बनेगा। समाज में यह एक बड़ा भ्रम फैला हुआ है कि अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने पर व्यक्तित्व निखरता है, आत्मविश्वास बढ़ता है और आगे बढ़ने के सारे दरवाजे खुल जाते हैं। इसी का परिणाम है कि अंग्रेजी पढ़ाने और अंग्रेजी बोलने की क्षमता को सुधारने का धंधा या व्यापार शहर और गांव हर तरफ दिन-प्रतिदिन तेजी से फैलता जा रहा है। अंग्रेजी का नाम लेकर व्यापार के तौर पर तमाम स्कूल खुल रहे हैं और लोग उनकी ओर बेतहाशा दौड़ रहे हैं। यहां पर यह भी गौरतलब है कि आज से तीन-चार दशक पहले तक सरकारी विद्यालयों की प्रतिष्ठा अधिक थी, पर अब पासा पलट गया है। अब इन विद्यालयों की साख घटती जा रही है और उनकी जगह निजी स्कूल ले रहे हैं जो अंधाधुंध फीस भी उगाहते हैं।

दरअसल भाषाओं को हम अपने जीवन में उपयोगिता और कामयाबी के आधार पर प्रतिष्ठा के हिसाब से कम से ज्यादा के बढ़ते क्रम में एक सीढ़ी पर रखते हैं और उनके प्रति उसी हिसाब से आकृष्ट भी होते हैं। कहना न होगा कि अंग्रेजी इस सीढ़ी पर सबसे ऊपर के पायदान पर स्थापित है और हिंदी तथा अन्य भाषाएं नीचे हैं। यह एक विडंबना ही है कि शिक्षा में रूढ़ियों का सिक्का चल रहा है। यह जानबूझकर भी कि मातृभाषा शिक्षा का स्वाभाविक और सक्षम माध्यम है, हम उसका लाभ न उठाकर दूसरी अपरिचित भाषा को चुन रहे हैं। ऐसा करते हुए हम बच्चे पर अतिरिक्त दबाव डालते हैं और उसके बौद्धिक विकास तथा सर्जनात्मकता को एक हद तक बाधित करते हैं। दूसरी ओर भाषा की शिक्षा भी संशय की मानसिकता में की जाती है। भाषिक कौशलों पर समुचित ध्यान न देने से अभिव्यक्ति और संचार की समस्याएं खड़ी होती हैं। भाषा एक अध्ययन विषय के रूप में और शिक्षा के माध्यम के रूप में किस तरह प्रयुक्त हो, इसको लेकर स्पष्ट और प्रभावी नीति नहीं विकसित हो सकी है। यह समाज के व्यापक हित में होगा कि हम न केवल शिक्षा के माध्यम को परिचित भाषा में ढालें, बल्कि भाषा शिक्षण की पद्धति को भी वैज्ञानिक ढंग से लागू करें।

(लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विवि वर्धा के कुलपति हैं)

response@jagran.com